तेरापंथ-दिग्दर्शन

लेखक
मुनि श्री नगराजजी

प्रकाशक
श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
३, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१ ।

प्राक्कथन

जैन धर्म, दर्शन व इतिहास के अधिकारी विद्वान डाक्टर हर्मन जकोबी ने भारतवर्ष से अपने देश जर्मनी की ओर विदा होते हुए एक भाषण में कहा था—"मेरी यह भारत-यात्रा अप्रत्याशित सफल रही है और वह इसलिए कि इस बार मैंने राजस्थान में जाकर तेरापंथ के रूप में भगवान महावीर के साधु-समुदाय को देखा है। मैं अपने आगमिक अध्ययन के आधार से यह विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ कि इस पंथ की आडम्बर-शून्य व अहिंसा-प्रधान संयम-साधना वही है जो आज से अढ़ाई हजार वर्ष पहले भगवान् श्री महावीर के श्रमण-संघ में थी।"

"तेरापंथ दिग्दर्शन" इसी जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय की परिचय-पुस्तिका है। आज के जन-जीवन की व्यस्तता को समझते हुए अति संक्षेप की शैली में यह लिखी गई है। फिर भी सूक्ष्म शब्द विन्यास के होते हुए भी जिज्ञासाशील व्यक्ति तेरापंथ का सर्वाङ्गीण दर्शन एक साथ पा सकें—यह मेरा अभिप्रेत रहा है। इस अभिप्रेत को निभाने में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, यह मैं नहीं कह सकता।

धर्म से अधिक मानव मन का पड़ोसी एक भी दूसरा शब्द रहा हो, ऐसा नहीं लगता। यह वह शब्द है, जिस पर मनुष्य अपने आपको सदा न्योछावर किए रहा है। पर इसके साथ-साथ यह भी इतना ही सत्य है कि मनुष्य ने धर्म को शाब्दिक रूप से अपनाया और क्रियान्वित रूप से उसे ठुकराया। जहाँ धर्म ने कहा—'आयतुले पयासु' अर्थात् अपनी आत्मा के समान समस्त प्राणियों को समझो, वहाँ उसने धर्म के नाम पर वैर, विरोध, घृणा, द्वेष आदि को अप-नाया। धर्म ने जहाँ कहा—'मा गृधः कस्यचिद् धनम्' अर्थात्

के धन में आसक्त मत बनो, 'वित्तेण ताण न लभे पमत्ते—धन से मनुष्य को त्राण नहीं मिलता' वहाँ मनुष्य ने अपने इष्ट पदार्थों में धन को ही प्राथमिकता दी। वह शोषक और संग्राहक बना। त्याग मूलक धर्म के नाम पर भी उसने सोना-चाँदी और हीरे-मोतियों का ढेर लगाया। जहाँ धर्म ने कहा—'एकैव मानुषी जाति'—मनुष्य की जाति एक है, वहाँ मनुष्य ने धर्म के नाम पर ही मनुष्य जाति को सदा परस्पर विरोधी खण्डों में देखा। अपने ही जैसे हाथ और पैर वाले मनुष्यों को अस्पृश्य कह कर दुत्कारा। पानी और हवा की तरह सबसुलभ धर्म को अपनी बपौती की धरोहर मान कर ऐंठा।

तेरापंथ प्रवर्त्तक आचार्य श्रीभिक्षुगणी ने इन्हीं सब धर्म विरोधी आचरणों से खिन्न होकर एक युग धर्म के रूप में तेरापंथ का प्रवर्त्तन किया। वे अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल रहे, यह प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित तेरापंथ की गतिविधि व नियमोपनियम से स्वयं प्रकट होगा।

अगले वर्ष तेरापंथ के दो सौ वर्ष पूरे हो रहे हैं। नवम अधिनायक आचार्य श्रीतुलसी के नायकत्व में विराट समारोह आयोजित होने जा रहा है। प्रस्तुत पुस्तक इसी उपलक्ष में लिखी गई है। आचार्य श्रीभिक्षु व तेरापंथ-शासन के प्रति यह लघुकाय साहित्य-श्रद्धांजलि अर्पित कर मैं अपने आपको कृतकृत्य मानता हूँ।

सं० २०१६ वैशाख शुक्ला सप्तमी,
कलकत्ता

मुनि नगराज

प्रकाशकीय

विक्रम सम्वत २०१७ आषाढ़ पूर्णिमा को तेरापंथ अपने दो सौ वर्ष पूरे कर रहा है। युग निर्माता आचार्य श्री तुलसी जैसे आचार्यों के शासनकाल में ऐसे प्रसंग का उपस्थित होना एक असाधारण महत्व रखता है। ऐसे प्रसंगों पर ही तेरापंथ की अप्रतिम संयम-साधना, अविचल संगठन-शक्ति, आचार्य श्री भिक्षु का अपूर्व अहिंसा चिन्तन, और तत्त्व प्रधान दर्शन विश्व-विश्रुत हो सकता है। श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा विस्तृत रूप से तेरापंथ द्विशताब्दि समारोह आयोजित कर रही है। इस अवधि तक निर्धारित आगम-साहित्य, भिक्षु-साहित्य, तेरापंथ-इतिहास और तेरापंथ-दर्शन, आदि ग्रन्थ प्रकाशित किए जा सकें, ऐसा निश्चय भी महासभा ने किया है। इस अवसर के लिए एक ऐसी पुस्तक भी अपेक्षित थी जो संक्षेप में तेरापंथ का समग्र परिचय दे सके और जो सुगमता से देश और विदेश में विद्वानों तक पहुँचाई जा सके। मुनि श्री नगराज जी द्वारा लिखित यह "तेरापंथ दिग्दर्शन" पुस्तक हमारी प्रस्तुत अपेक्षा की पूरक है। मुनि श्री हिन्दी के अभ्यस्त लेखक हैं। इससे पूर्व आप दर्जनों पुस्तकें विभिन्न विषयों पर लिख चुके हैं।

द्विशताब्दी समारोह के उपलक्ष में यह प्रथम प्रकाशन प्रस्तुत करते हुए हमें परम हर्ष है।

ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी,
२०१६
कलकत्ता-१

मोहन लाल बांठिया
मन्त्री
श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

अनुक्रम

जैन-धर्म : प्राग्ऐतिहासिक

भारतवर्ष सदा से ऋषि-महर्षियों, श्रमण-निर्ग्रन्थों की तपोभूमि रहा है। उनकी ज्ञानाराधना और चरित्र-साधना से भारतीय जन-मानस आध्यात्मिक उर्वरता पाता रहा है। उनकी तपःपूत वाणी ही आगम, वेद, उपनिषद् और त्रिपिटकों के रूप में प्रस्फुटित होकर भारतीय संस्कृति का मौलिक आधार बनी है। जैन-धर्म शाश्वत आधार से अनादि अनन्त है। कालचक्र के उत्थान और पतन के सूचक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी नामक अध्याय युग में चौबीस तीर्थंकर होते हैं। यही क्रम इस भरत खंड में चलता रहा है और चलता रहेगा। इस अवसर्पिणी काल के आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभनाथ (आदिनाथ) और चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर थे। इतिहास भी इस दिशा में बहुत स्पष्ट होता जा रहा है। महावीर तो इतिहास के ज्योतिर्मान नक्षत्र हैं ही और अब तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ भी ऐतिहासिक पुरुषों की गणना में आने लगे हैं। इससे भी पहले इतिहास की पहुँच तक जैन धर्म भारतवर्ष में वर्तमान मिलता है। पुरातत्त्व-गवेषणाओं से व अन्य पुष्ट आधारों से यह भलीभाँति प्रमाणित हो चुका है कि जैन धर्म प्राग्ऐतिहासिक है। वेद पुराण आदि में भी अनेक तीर्थंकरों व जैन धर्म के अस्तित्व का पता चलता है। वैदिक परम्परा में भी आदिनाथ प्रभु अवतारों की कोटि में लिये गये हैं। भगवान् महावीर के युग में जैन धर्म का पुनः प्रवर्तन हुआ और वही आधार आज ढाई हजार वर्षों के पश्चात् भी एक ज्योतिपुंज के रूप में मानव-जाति को निःश्रेयस् की ओर अग्रसर होने के लिये मार्ग दर्शन दे रहा है।

तेरापंथ

भगवान् महावीर के बाद जैन धर्म श्वेताम्बर और दिगम्बर शाखाओं तथा प्रशाखाओं में विभक्त होता चला गया। काल-प्रवाह से शिथिल होते हुए जैन धर्म में समय-समय पर सुधार व क्रान्तियाँ आती रही हैं। विक्रम संवत् १८१७ में साध्वाचार को शुद्ध और सुदृढ़ बनाने के लिए व अहिंसा, दया, दान आदि को रूढ़िगत व्याख्याओं के कटघरे से निकाल कर उन्हें यथार्थ स्वरूप में उपस्थित करने के लिए जो एक व्यापक उत्क्रान्ति हुई, उसीका परिणाम तेरापंथ है।

आचार्य श्री भिक्षुगणी

तेरापंथ के प्रवर्तक आचार्य श्री भिक्षुगणी थे। उनका जन्म राजस्थान के कंटालिया ग्राम में विक्रम संवत् १७८३ में हुआ था। आपने संवत् १८१७ में तेरापंथ का प्रवर्तन किया और संवत् १८६० में आपका स्वर्गवास हुआ। आप एक असाधारण पुरुष थे। आपका जीवन आदि से अन्त तक संघर्षों की घुमड़ती घटाओं में ही बीता। असीम शास्त्र-ज्ञान और अनुपम मेधा आपके जीवन के सहज गुण थे। आप एक महाप्राण युग-पुरुष थे। आप अबाध गति से सत्य की राह पर श्रेयोभिमुख होकर बढ़ते ही चले। उनकी अथक तपस्या का परिपाक ही तेरापंथ है, जिसमें आज १९९ वर्ष बाद नवम अधिनायक आचार्य श्रीतुलसी के नेतृत्व में ६५२ साधु-साध्वी देश के कोने-कोने में अणुव्रत आन्दोलन के रूप में नैतिक नव जागरण की अलख जगा रहे हैं।

नामकरण

तेरापंथ का नामकरण सर्वप्रथम सर्वसाधारण की वाणी में प्रस्फुटित हुआ। आचार्य श्री भिक्षुगणी इस आध्यात्मिक क्रान्ति के

शुभारम्भ में अपने साथ साधुओं के सहित १३ की संख्या में थे। राजस्थान के लोगों ने इस नवोदित धर्म-परम्परा को तेरा (तेरह) पंथ कहना शुरू किया। राजस्थानी भाषा में तेरह को तेरा कहा जाता है। इस प्रचलित लोकसंज्ञा को आचार्य श्री भिक्षुगणी ने दो अध्यात्म मूलक अर्थों से अनुप्राणित कर उसे सन्त के लिए स्वीकार किया। उन्होंने कहा—हे प्रभो! यह तेरा पंथ अर्थात् हे भगवन्! यह तुम्हारा ही पथ (रास्ता) है। दूसरा अर्थ उन्होंने यह लगाया कि पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति—इन तेरह साध्वाचारके नियमों का पालन करने वालों का मत तेरापंथ है।

प्राणवान् संघ-संस्थान

तेरापंथ संघ व्यवस्था के अनुसार समस्त संघ में सर्वाधिकार सम्पन्न एक आचार्य होते हैं। वे व्यवस्था विशेष की दृष्टि से साधु-साध्वियों के सिंघाड़ा (दलों) का निर्माण करते हैं। एक दल में एक प्रमुख होता है और अन्य उसके सहचारी। इस प्रकार सारा संघ छोटी-छोटी इकाइयों में बँट जाता है। आचार्य उन अग्रगण्यों को पृथक्-पृथक् प्रान्तों, नगरों, और गाँवों में जाकर जन-कल्याणकारी प्रेरणायें देने का निर्देश करते हैं। आचार्य का निर्देश सर्वोपरि और सर्वमान्य होता है। पृथक्-पृथक् वर्गों में अग्रगण्य का आदेश उनके सभी सहवर्तियों को मान्य होता है। विनय और अनुशासनशीलता के संस्कार संघ में परम्परागत व्यवस्था से स्वतः बनते हैं। विनय अनुशासनशीलता आदि प्रशिक्षण के भी मुख्य अंग होते हैं। यही कारण है कि आज्ञा-पालन पराधीनता का अंग न रह कर जीवन का सहज गुण बन गया है। इस सुदृढ़ संघ-व्यवस्था का परिणाम यह होता है कि संघ के समस्त साधु-साध्वियों की शक्ति का उपयोग जन कल्याण की किसी एक ही दिशा में सहजतया हो जाता है। पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय नहीं बढ़ते और न फिर सजातीय सम्प्रदायों

में होनेवाले घणा, वैमनस्य, प्रतिद्वंद्विता ग्रादि के लिये भी कोई ग्रव-काश रह जाता है। वर्तमान ग्राचार्य ग्रपने उत्तरवर्ती ग्राचार्य का नियुक्त करते हैं।

मर्यादा-महोत्सव

मर्यादा महोत्सव संघ-व्यवस्था का एक प्रमुख ग्रंग है। इस व्यवस्था के ग्रनुसार कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात् साधु-साध्वीजन ग्राचार्य द्वारा निर्णीत स्थान की ग्रोर पाद विहार करते हैं। सैकड़ों ग्रौर सहस्रों मीलों का विहार करते हुए वे सब ग्राचार्य के पास पहुँचने लगते हैं। माघ शुक्ला सप्तमी को इस समारोह की सम्पन्नता होती है। लगभग ५०० व ६०० साधु-साध्वियों के बीच ग्राचार्य, ग्राचार्य श्री भिक्षुगणी द्वारा विरचित मर्यादाग्रों का वाचन करते हैं। सहस्रों दर्शनार्थी देश के कोने-कोने से पहुँच जाते हैं। माघ शुक्ला सप्तमी के दिन तेरापंथ संविधान की पूर्णता हुई थी। इसलिए तेरा-पंथ के चतुर्थ ग्रधिनायक श्रीमज्जयाचार्य ने मर्यादा महोत्सव के नाम से इस समारोह की प्रवृत्ति संघ में डाली। दो व ढाई मास का साधु-समागम सारे संघ में एक नयी स्फूर्ति ग्रौर चेतना ला देता है। साधु-जन विगत वर्ष का कार्य विवरण ग्राचार्य के सम्मुख उपस्थित करते हैं ग्रौर ग्राचार्य साधु-साध्वियों के चातुर्मास एवं ग्रागामी वर्ष का कार्यक्रम निर्धारित करते हैं। संगठन ग्रौर ग्राचार की दृढ़ता के लिए मर्यादा महोत्सव एक निरुपम उपक्रम है। भगवान् बुद्ध ने एक बार ग्रपने श्रमण-संघ के बारे में कहा था---भिक्षुग्रो, यह श्रमण संघ तब तक ग्रबाध गति से चलता रहेगा, जब तक समस्त भिक्षु पुनः-पुनः एकत्रित होते रहेंगे ग्रौर ग्रपने ग्राचार धर्म पर विचार करते रहेंगे। एकमत होकर जमा होंगे ग्रौर एकमत होकर उठेंगे। मर्यादा महोत्सव सचमुच ही इस उक्ति का चरितार्थ करता है।

इस समारोह काल में साधुओं की परस्पर होने वाली सिद्धान्त चर्चा व चिन्तन-मनन बौद्ध धर्म का जीवन प्रदान करने वाली सगीतियों की याद दिला देती है। आचार्य का वात्सल्य और साधु-साध्वियों का भक्ति प्रकार किसी भी विचारक को लुभाए बिना नहीं रहता। साधु-जनों का पारस्परिक सौजन्य एवं विनयपूर्ण व्यवहार एक समुन्नत संस्कृति का परिचय देता है।

संघ में और भी अनेक समारोह मनाए जाते हैं। भाद्र शुक्ला त्रयोदशी को प्रतिवर्ष भिक्षु चरमोत्सव मनाया जाता है। तेरापंथ-प्रवर्तक आचार्य श्री भिक्षुगणी का स्वर्गवास इसी तिथि को हुआ था। इसीलिए उस दिन आचार्य श्री भिक्षु के जीवन की विशेषताओं पर चतुर्विध संघ के आचार्य प्रकाश डालते हैं। इसी प्रकार प्रतिवर्ष एक पट्टोत्सव समारोह मनाया जाता है। संघ के वर्तमान आचार्य जिस तिथि को आचार्य-पद पर आरूढ होते हैं, उसी तिथि को साधु-साध्वी-जन व अन्य गृहस्थ वक्ता अपनी भावना भरी कविताओं, गीतिकाओं से उनका वर्धापन करते हैं।

अणुव्रत आन्दोलन के सम्बन्ध से भी अहिंसा दिवस, मैत्री दिवस आदि दश-व्यापी समारोह मनाए जाते हैं। आचार्यश्री के तत्वावधान में अणुव्रत आन्दोलन का वार्षिक अधिवेशन भी सम्पन्न होता है, जिसमें विभिन्न प्रान्तों व विभिन्न धर्मों के लोग एकत्रित होकर आचार्यश्री से नैतिक प्रेरणाएँ लेते हैं।

आचार-संहिता

अहिंसा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच महाव्रत कहलाते हैं। इन पाँच महाव्रतों का पालन प्रत्येक साधु और साध्वी के लिए अनिवार्य होता है। अहिंसा महाव्रत में वे सूक्ष्म जीवों की हिंसा से भी बचते हैं। जैन धर्म ।

६ प्रकार के जीव होते हैं—पृथ्वीकायिक, अपकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक। पृथ्वीकायिक अहिंसा के लिए वे छोटे-से-छोटे प्रस्तर का भी भेद नहीं करते। सद्य निष्कासित मिट्टी आदि का उपयोग नहीं करते और न उसका स्पर्श ही करते हैं। अपक्व नमक भी अपने उपयोग में नहीं लाते हैं। अप्कायिक अहिंसा के लिए उबला हुआ जल पीते हैं या किसी पदार्थ विशेष के सम्मिश्रण से निर्जीव हुए पानी को ग्रहण करते हैं। तेजस्कायिक अहिंसा की दृष्टि से अग्नि मात्र का वे न स्पर्श करते हैं और न किसी प्रकार से उसे उपयोग में लाते हैं। वायुकायिक अहिंसा की दृष्टि से वे अपने मुख पर मुखवस्त्रिका धारण किये रहते हैं क्योंकि बोलते समय मुख से उत्पन्न होने वाले शब्द संयुक्त वायु के पूर्ण वेग से आकाशस्थ वायु के जीवों का हनन जैन शास्त्रों में बताया गया है। मुखवस्त्रिका से वह वायु खण्डित हो जाता है और संभावित हिंसा टल जाती है। इसीलिए वे ताली नहीं बजाते, पंखे आदि से हवा नहीं लेते। स्वाभाविक श्वासोच्छ्वास में जैन शास्त्रों के अनुसार हिंसा नहीं मानी गई है। इसलिए नाक आदि पर वस्त्र धारण किए रहने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। वनस्पतिकायिक अहिंसा की दृष्टि से बिना उबले फल सब्जियां आदि का वे न उपयोग करते हैं और न स्पर्श ही करते हैं। बीजादि रहित गिरी निर्जीव मानी जाती है। गेहूँ आदि अपक्व धान्य का वे स्पर्श नहीं करते हैं।

वे चींटी प्रमुख सूक्ष्म जन्तुओं की अहिंसा के लिए एक रजोहरण (ऊन का बना चँवर जैसा एक उपकरण विशेष) अपने पास रखते हैं। चलते समय दृष्टि परिमार्जन करके चलना उनका नियम होता है। अँधेरे में जहाँ दृष्टि-परिमार्जन नहीं हो सकता वहाँ वे रजोहरण से भूमि परिमार्जित करके ही चरण विन्यास करते हैं। जहाँ चींटी आदि जन्तुओं की बहुलता होती है वहाँ भी उस रजोहरण से स्थान

ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य पालन उनका अनिवार्य धर्म है। इस सम्बन्ध में उनकी कुछ अन्य मर्यादायें भी हैं। कोई उपासिका साधु के चरण नहीं छू सकती कोई उपासक साध्वी के चरण नहीं छू सकता। साधु के लिए स्त्री मात्र का स्पर्श वर्जित है और साध्वी के लिए पुरुष मात्र का। साधु किसी अकेली स्त्री से न बात करते हैं और न भिक्षा ही लेते हैं। ऐसे ही साध्वी किसी अकेले पुरुष से न बात करती है और न भिक्षा ही लेती है। उनके लिए मानसिक विकार भी वर्जित है और यदि आ जाए तो उसका प्रायश्चित्त करना होता है।

अपरिग्रह रुपया-पैसा नोट आदि किसी प्रकार का वे अर्थ-संग्रह नहीं करते और न वे अर्थ का कोई उपयोग ही करते हैं। तेरापंथी साधुओं के मठ स्थल, स्थानक, उपाश्रय आदि निर्धारित स्थान नहीं होते। वे अपने उपयोग के लिए भवन आदि का निर्माण करना करवाना और अपने लिए बनाए गए भवन आदि में रहना आदि कार्यों में अहिंसा और अपरिग्रह महाव्रत का भंग मानते हैं। प्रत्येक साधु के पास सीमित वस्त्र और सीमित काष्ठ आदि के पात्र होते हैं। आवश्यकताओं को कहाँ तक सीमित किया जा सकता है, इसके लिए उन साधुओं का जीवन एक उदाहरण है। स्वल्प-सी उपकरण सामग्री में वे शीत, ग्रीष्म, और वर्षाकाल को आनन्दपूर्वक बिता देते हैं। वे सूर्यास्त से सूर्योदय पर्यन्त भोजन, पानी औषधि आदि का कोई उपयोग नहीं करते, चाहे कैसी ही प्रतिकूल परिस्थिति क्या न हो। वे गृहस्थ से कोई शारीरिक सेवा नहीं लेते और प्रत्येक कार्य अपने ही हाथों से करते हैं चाहे वह काम सिलाई, धुलाई का हो या इंजक्शन लगाने, ऑपरेशन करने या मोतियाबिंद उतारने आदि का हो। वे शौच के लिए शहर से बाहर मैदान में जाते हैं। रुग्णावस्था में किसी साधु की हरिजनोचित सेवा को साधु ही करता है, कोई हरि-

जन नहीं। व अपने बालो का लुचन करते हैं और इसके लिए कैंची उस्तरे आदि का उपयोग नहीं करते।

माधुकरी भिक्षा

जन साधुओं की भिक्षा के सम्बन्ध में शास्त्रकारों ने कहा है— 'जहा दुम्मस्स पुप्फेसु भमरो आवियई रसं' अर्थात् जैसे भ्रमर सुविकसित फूलों से थोड़ा-थोड़ा रस लेकर तृप्त रहता है उसी प्रकार साधु बहुत सारे घरों से थोड़ा-थोड़ा भोजन लेकर तृप्त रहे। जैन साधु के भिक्षा-ग्रहण में अहिंसा का पूरा विवेक बरता जाता है। अपने लिए बना भोजन वे नहीं लेते। गृहस्थ अपने लिए बनाए गए भोजन से अपनी आवश्यकता को सीमित कर जो भोजन देता है वही उनके लिए ग्राह्य है। यही नियम वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि प्रत्येक ग्राह्य पदार्थों के लिए लागू होता है।

सिद्धान्त पक्ष

वैसे तो तेरापंथ का समग्र सिद्धान्त जैन आगमों को प्रमाण मानकर चलता है फिर भी आचार्य श्री भिक्षुगणी ने बहुत सारे विषयों में जैन-शास्त्रों का ही एक गंभीर चिन्तन संसार के सामने रखा, जहाँ तक सामान्य लोक चिन्तन सहसा नहीं पहुँच पाता। दया व अनुकम्पा के विषय में उन्होंने कहा, लोग कहा करते हैं, बचाओ, पर सर्वांग विशुद्ध और व्यापक सिद्धान्त 'मत मारो' का ही है। बचाओ की बात तो स्वयं ही उसमें अन्तर्हित हो जाती है। बचाओ के एकान्तिक उपदेश में मारते रहो की बात भी परोक्ष रूप से स्वीकृत हो जाती है क्योंकि मारने की प्रवृत्ति न रहे तो बचाने का कोई प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता।

तेरापंथ मानता है कि बचाने की ही बात कहनी है तो बधिक को पाप कर्म से बचाओ, यह कहना चाहिए। बधिक का हृदय बदल कर यदि उसे उस आत्महनन से बचा लिया जाता है तब वध्य तो स्वयं बच ही जाता है। जीव की हिंसा करने वाला तत्त्व दृष्टि में अपना ही आत्महनन करता है। जहाँ लोग रुपया-पैसा देकर बकरे आदि को कसाई से छुड़वाते हैं वहाँ वे वास्तव में एक बकरे को बचा कर दो बकरा को मारने का प्रबंध कर देते हैं। हिंसा, प्रलोभन और बलात्कार के साथ शुद्ध अनुकम्पा नहीं ठहर सकती।

दान पूर्ण संयमी पात्र को जो दान दिया जाता है, वही परम आध्यात्मिक दान है। एक ओर लोग नाना अनैतिक कर्मों से निम्न वर्ग का शोषण करते रहते हैं और दूसरी ओर उनकी सुख-सुविधा के लिए यत्किंचित् दान करते रहते हैं। इस प्रकार का दान आध्यात्मिक तो क्या सामाजिक भी माना जाए तो अज्ञान है। वह तो ठीक राजस्थान की इस उक्ति को चरितार्थ करने वाली बात है।

एरण की चोरी करी दियो सुई को दान,
ऊँची चढ़कर देखण लागी कितोक दूर विमान।

अर्थात्—सुनार की पड़ोसिन ने अवसर पाकर उसका एरण चुरा लिया और उस जब इस बात की चिंता हुई कि पाप से मुक्त होना है तो राह चलते किसी याचक को एक सूई का दान कर दिया और इसमें इतना हर्ष मनाया कि घर के ऊपर चढ़कर आकाश की ओर झाँकने लगी कि मैंने जो दान-पुण्य किया है, उसके प्रभाव से स्वर्ग का विमान मुझे ले चलने के लिये आयेगा।

उक्त प्रकार के दान की परम्परा अनाध्यात्मिक ही नहीं, अपितु असामाजिक भी है। इससे समाज में विषमता बने रहने का आश्वासन हो जाता है। दान करो, दान करो का एकान्तिक पक्ष शोषण करो की बात को भी परोक्ष रूप में स्वीकार कर लेता है। तेरापंथ

का मतव्य है कि शोषण न करो, सग्रह न करो– यही बात परम आध्यात्मिक है और समाज-शास्त्र की रीढ है। शोषण व सग्रह समाज से मिटा तो याचक और दाता के रूप में हीनता और उच्चता की होने वाली अनुभूतियाँ समाज से अपने आप मिट जाएगी।

तेरापथ के अनुसार समाज सेवा आदि के कार्य जो आत्म-शुद्धि की अनवद्य प्रेरणा करते हैं वे पारमार्थिक हैं। जो केवल शरीर सेवा तक ही रह जाते हैं, वे लौकिक कर्तव्य मात्र हैं।

तेरापथ के अभिमतानुसार किसी भी धर्म, जाति व देश का व्यक्ति अहिंसा क्षमा सत्य, सतोष, ब्रह्मचर्य आदि का पालन करने से मोक्ष की ओर ही अग्रसर होता है।

तेरापथ मूर्तिपूजा में विश्वास नही करता है। अरिहन्त सिद्ध आदि परमेष्ठिपचक की भाव-स्तुति और भाव अर्चा ही वहाँ अभिमत है।

शिक्षा के क्षेत्र मे

सघ में शतप्रतिशत साधु साध्वियाँ शिक्षित हैं। एक भी निरक्षर नही हैं। अध्ययन अध्यापन की सघ में स्वतत्र व्यवस्था है। प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी शिक्षा-व्यवस्था की आधारभूत भाषाएँ हैं। गुजराती बगला, कन्नड, तामिल, तेलगू आदि प्रादेशिक व अग्रेजी, जर्मन आदि विदेशी भाषाओं को भी ऐच्छिक रूप से साधु-जन पढ़ते है। सघ में धर्म-दर्शन, व्याकरण, साहित्य आदि विषयों के अनेक अधिकारी विद्वान् हैं। वे समीक्षात्मक बुद्धि से साम्यवाद समाजवाद, सर्वोदय आदि का भी अध्ययन करते हैं। सस्कृत भाषा के अभ्यासी ऐसे भी साधु सघ में है, जिन्होने एक-एक दिन में पाँच-पाँच सौ व सहस्र-सहस्र श्लोकों की रचना की है। अनेक आशु कवि है जो तत्काल दिए गए विषय पर श्लोकबद्ध भाषा में प्रशस्त विवेचन कर देते हैं।

ग्रन्थ प्रणयन की दिशा में भी साधु समाज ने बहुत बड़ा कार्य किया है। हिंदी संस्कृत, प्राकृत आदि में अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ आचार्य श्रीतुलसी व उनके मेधावी शिष्यों ने दर्शन, व्याकरण, काव्य आदि विषयों पर लिखे हैं।

लगभग सात वर्षों से आचार्य श्री तुलसी ने संघ में एक व्यवस्थित शिक्षा व परीक्षापद्धति का शुभारम्भ कर दिया है, जिसके अनुसार शिक्षार्थी साधु-साध्वीजन योग्य, योग्यतर व योग्यतम की परीक्षाएँ देते हैं। उन परीक्षाओं के लिए सात वर्ष का समय निर्धारित है। समग्र अध्ययन एक व्यापक दृष्टिकोण से चलता है। जहाँ वे जैन आगमों का अध्ययन करते हैं, वहाँ गीता रामायण आदि ग्रन्थों का भी तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। इतिहास, गणित, साहित्य, व्याकरण, न्याय, दर्शन आदि सभी आवश्यक विषय वे अपने पाठ्यक्रम में आधार से पढते हैं। योग्यतम की परीक्षा तक वे संस्कृत व्याकरण में भिक्षु शब्दानुशासन के अष्टादश सहस्र श्लोक परिमाण वाला बृहद्वृत्ति पढ़ लेते हैं। न्याय के विषय में वे रत्नाकरावतारिका सहित प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार पढ लेते हैं। योग्यतम की परीक्षा के बाद किसी एक ही विषय पर अधिकार पूर्ण ग्रन्थ लिख कर वे 'कल्प' की परीक्षा देते हैं।

तेरापंथ की संघ-व्यवस्था के अनुसार नाम के साथ शिक्षा विषयक उपाधियों का प्रयोग नहीं होता है। परीक्षा का लक्ष्य किसी ज्ञान-विशेष की सीमा तक पहुँचना ही है। संघ के साधु-साध्वी जन विद्या-लयों या विश्वविद्यालयों में नहीं पढते न वे तत्सम्बन्धी परीक्षाएँ ही देते हैं। वेतन देकर या दिलवाकर भी वे किसी विद्वान् से नहीं पढते। उनके पढने का क्रम संघ के आचार्य या विद्वान् साधुओं के सान्निध्य में ही चलता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के विद्वानों व विशेषज्ञों से वे विचारण करते हैं या अवसर पर रूप से अपनी सेवाएँ उन्हें देना चाहते हैं।

तेरापंथ साधु-संघ की शिक्षा-व्यवस्था ने कंठस्थ करने की परम्परा

को जीवित और विकसित किया है। दस-दस और बीस-बीस हजार श्लोकों का कठस्थ करने वाले साधु-साध्वियाँ विद्यमान हैं। कुछ साधुजन तो इस दिशा में और भी बहुत आगे बढ़ जाते हैं। कठस्थ स्मृति ज्ञान की यह परम्परा उस युग की याद दिलाने वाली है जब लेखन-कला का प्रचलन नहीं हुआ था। आगम, उपनिषद् और त्रिपिटक लोग कठस्थ ही रखा करते थे।

अवधान विद्या स्मृति और गणित से सम्बन्धित एक चामत्कारिक साधना अवधान विद्या है। अवधानकार श्रवणमात्र से संस्कृत के कठिनतम श्लोक, बृहत् अंक-संख्याएँ, ज्ञात या अज्ञात भाषाओं के वाक्य आदि अनेक बातें ज्यों-की-त्यों स्मरण रखते हैं। घंटों में हल होने वाले गणित के बहुत प्रकार के प्रश्नों का कुछ ही क्षणों में वे समाधान दे देते हैं। संघ के अनेक साधु-साध्वियों ने इस दिशा में सफलता प्राप्त की है। विगत दो वर्षों में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न अवधानकारों द्वारा जो अवधान प्रयोग हुए उनमें सर्वसाधारण से लेकर देश के विद्वानों व विचारकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन्, पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रभृति लोगों ने भी उक्त प्रकार के आयोजनों में सक्रिय भाग लेकर मुक्त कंठ से इस स्मृति-साधना की प्रशंसा की है।

कला

तप साधना के रूक्ष जीवन में साहित्य और कला का असाधारण विकास साहित्यकारों व कलाविदों को भी आश्चर्य में डाल देता है। लिपि कौशल में जो विकास तेरापंथ के साधु-साध्वियों ने किया है, उसे निर्विवाद रूप से बेजोड़ मान लेना पड़ता है। सहस्रों पृष्ठ के ग्रन्थ आज भी हाथ से लिखे जाते हैं। उन ग्रन्थों का लिपि-सौन्दर्य और उनकी स्वच्छता व शुद्धता आदि विशेषताओं के सामने आज की प्रति

विकसित मुद्रण कला भी फीकी पड़ जाती है। मानसिक और कायिक एकाग्रता की इस निरुपम साधना को देख कर लोग विस्मित रह जाते हैं। सौन्दर्य, स्वच्छता आदि को सुरक्षित रखते हुए और चश्मा, आईग्लास आदि कृत्रिम साधनों का सहारा न लेते हुए भी कितना सूक्ष्म लिखा जा सकता है, इसका दूसरा उदाहरण सम्भवतः अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगा। सौ इंच लम्बे और चार इंच चौड़े पत्र के दो पृष्ठों में अढ़ाई हजार श्लोक लिखे गए हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उक्त परिमाण के पत्र में उतनी सूक्ष्मता से गीता लिखी जाए तो उस एक ही पत्र में तीन सम्पूर्ण गीताएँ पूरी हो जाएँगी फिर भी पत्र खाली रहेगा क्योंकि गीता के समग्र श्लोक ७०० के लगभग ही हैं। उक्त समग्र पत्र में लगभग ८०००० अक्षर हैं। इसी पत्र को देख कर प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि पश्चिम के देश कितनी ही तरक्की यान्त्रिक साधनों में कर गए हैं, पर हस्तलेख की इस कला में वे बहुत पीछे रह जाते हैं। लेख कलाकारों की दक्षता से इस प्रकार अनेक पत्र लिखे जाते हैं। सम्यक् साधना से मानसिक एकाग्रता और नेत्र ज्योति उत्कर्ष की किस सीमा तक पहुँच जाती है, यह इसी बात का प्रतीक है।

प्रश्न हो सकता है कि आज के मुद्रण प्रधान युग में इस प्रकार के सूक्ष्म और श्रमसाध्य लेखों का क्या उपयोग है। भले ही अन्य क्षेत्रों में मुद्रण-कला ने लेखन-कला की उपयोगिता को अस्वीकृत कर दिया हो पर पाद विहारी विद्या रसिक साधुओं के लिए उसकी उपयोगिता आज भी ज्यों-की-त्यों सुरक्षित है। हर ग्राम में पुस्तकालय नहीं मिल सकता जब कि दर्शन आदि विषयों के मौलिक ग्रंथ बड़े-बड़े पुस्तकालयों में भी सुलभ नहीं होते। सतत विहरणशील साधुओं के लिए मात्र यही अवलम्बन रह जाता है कि वे आवश्यक ग्रन्थों को सूक्ष्मता से लिपिबद्ध कर अपने साथ लिए चलें। ग्रन्थों का भार वहन कोई नौकर या वाहन विशेष तो जैन आचार-महिमा

के अनुसार कर ही नहीं सकता, इसलिए ग्रन्थ जितने ही सूक्ष्म रूप में लिखे होते हैं, उतने ही वे अधिक संख्या में और सुविधा से रखे जा सकते हैं। अतः तेरापंथ साधु संघ की कला केवल कला के लिए ही नहीं, अपितु उपयोगिता के लिए भी है।

चित्र-कला, सिलाई-कला, पात्र निर्माण-कला आदि अनेक ऐसे विषय हैं जिनकी सरस अनुभूति दर्शक ही कर सकता है, पाठक नहीं।

अणुव्रत आन्दोलन

जब कि भारत स्वतन्त्र हुआ ही था और देश में नव निर्माण की लहर उठ रही थी, आचार्य श्री तुलसी ने दो दृष्टियों से अणुव्रत आन्दोलन का शुभारम्भ किया। एक व्यवस्थित और सुसंगठित साधु संघ का देश और मानव जाति के लिए सार्वजनीन उपयोग हो जो नितान्त अपेक्षित है। दूसरा यह कि देश का नैतिक स्तर इस गति से निम्न स्तर पर आ रहा था और नैतिक मूल्य इस असाधारण रूप से विघटित होते जा रहे थे कि हर व्यक्ति और समुदाय का यह कर्तव्य हो गया था कि वह इस दिशा में कुछ क्रियाशील होकर मानव समाज को नैतिक ऊर्ध्वमचरण का योग दे। इन्हीं आधारों से एक व्यवस्थित रूपरेखा के साथ अणुव्रत आन्दोलन देश के सामने आया। आन्दोलन के व्रत कोई अपूर्व नहीं थे, पर समग्र तेरापंथ साधु संघ का कटिबद्ध होकर इस अनुष्ठान में जुट जाना विलक्षण अवश्य था। उसी का परिणाम हुआ कि अणुव्रत आन्दोलन थोड़े ही वर्षों में राष्ट्र के चरित्र-निर्माण का सर्वाधिक समृद्ध उपक्रम सिद्ध हो रहा है। देश के प्रमुख विचारकों ने और उच्चतम अधिकारियों ने माना है कि 'देश के भौतिक शरीर का निर्माण हमारी पंचवर्षीय योजनाओं से हो रहा है और उसकी आत्मा का निर्माण अणुव्रत आन्दोलन से।'[१]

१—अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के तात्कालीन अध्यक्ष श्री यू०

अणुव्रत पांच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। सांसारिक व्यक्ति अपूर्णताओं में घिरा है। पूर्ण ब्रह्मचारी बन सके ऐसा सामर्थ्य उसमें नहीं है, पर यह तो अपेक्षित है कि वह इस विषय में मूलभूत सामाजिक मूल्यों का विघटन न करे वह पर स्त्री-गमन और वेश्या-गमन न करे। वह इस दिशा में यथा सम्भव संयम वृद्धि करता रहे यही ब्रह्मचर्य अणुव्रत का हार्द है। इसी प्रकार अन्य अणुव्रतों का समझ लेना चाहिए। आन्दोलन की रूप रेखा में मिलावट न करना, झूठ माप-तौल न करना, रिश्वत न लेना आदि समग्र ४५ नियम हैं। उन्हें यथाधिकता से ग्रहण करने वाले क्रमशः प्रवेशक अणुव्रती, अणुव्रती, और विशिष्ट अणुव्रती कहलाते हैं। एक लाख से भी अधिक व्यक्ति इन व्रतों को सक्रिय रूप से अपना चुके हैं।

आन्दोलन के वर्गीय कार्यक्रम में वर्ग सम्बन्धी निर्धारित नियम दिए जाते हैं। जैसे—विद्यार्थियों के लिए अवैधानिक तरीकों से परीक्षा में उत्तीर्ण होने का प्रयत्न न करना, तोड़-फोड़ मूलक हिंसात्मक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लेना आदि। व्यापारियों के लिए झूठ माप-तौल नहीं करना मिलावट नहीं करना आदि। राज कर्मचारियों के लिए रिश्वत नहीं लेना आदि। विभिन्न वर्गों के सहस्र-सहस्र लोगों ने इन नियमों को लेकर नैतिक जागृति की प्रेरणा पाई है।

आन्दोलन के और भी अनेक कार्यक्रम प्रस्फुटित हुए हैं और होते जा रहे हैं। कोई भी अच्छाई या बुराई अनुकूल वातावरण में ही पनपती है। अणुव्रत आन्दोलन ने नैतिकता के पक्ष में एक व्यापक और चिरस्थायी वातावरण देश में प्रस्तुत कर दिया है। साहित्यकार, पत्रकार सामाजिक कार्यकर्ता, राजनयिक नेता, अधिकारीगण आदि इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सक्रिय भाग ले रहे हैं। जनता इसे समय की पुकार मान कर पचाती जा रही है। यह प्रथम ही उदाहरण है कि किसी धर्म या सम्प्रदाय ने इतने व्यापक रूप से देश के

नतिक जागरण के लिए सार्वजनिक रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान की हो और अपने साधु संघ की राष्ट्रमान्य उपयोगिता सिद्ध की हो।

साधु-दीक्षा

साधु-दीक्षा भी देश के सामने एक ज्वलन्त समस्या हो रही है। धर्म सत्ता व नियन्त्रण शिथिल हो गए हैं। अनेकानेक सम्प्रदाय और एक एक सम्प्रदाय में अनेकानेक गुरु और फिर ऐसी स्थिति में पारस्परिक सघर्ष न हो और उन स्पर्धाओं के मध्य में अयोग्य दीक्षार्थियों की भरमार न हो यह कम हो सकता है। प्रलोभन, भुलावा, बलप्रयोग आदि अपत्य प्रवृत्तियाँ दीक्षा जैसी पवित्र वस्तु के साथ जुड़ गई हैं। इसी का परिणाम है कि ससद् और विधान सभाओं में आये दिन दीक्षा प्रतिबन्धक बिल आते रहते हैं। तेरापथ सघ का दीक्षा शुद्धिकरण भी एक प्रमुख विषय रहा है। मनीषी आचार्यों ने दीक्षा सम्बन्धी अराजकता को रोकने के लिए अनेक प्रकार की सुन्दर मर्यादाएँ स्थापित की हैं। दीक्षा का अधिकार संघ की मर्यादा के अनुसार केवल आचार्य को ही है। सभी दीक्षाएँ उन्हीं के हाथों होती हैं या किसी विशेष परिस्थिति में और किसी विशेष स्थान में उनके ही आदेश से होती हैं। वर्षों तक दीक्षार्थियों की साधनाएँ चलती रहती हैं। पूर्ण परिपक्वता देख कर ही आचार्य किसी भाई या बहन को साधु सघ में दीक्षित करते हैं। दीक्षा से पूर्व अनिवार्यत आवश्यक हो जाता है कि दीक्षार्थी व्यक्ति के पारिवारिक जन उसकी दीक्षा के लिए सहमत हो। माता, पिता, पति, पत्नी अपना लिखित अनुरोध आचार्य प्रवर को देते हैं। इस प्रकार अनवद्य विधि से होने वाली दीक्षाओं का परिणाम बहुत ही सुन्दर रहा और रहता है। समुचित दीक्षा के साथ सघ में जाते ही समुचित शिक्षा का सुयोग भी हरएक साधु को मिल जाता है। उनकी अध्ययनशील

जीवन-साधना, स्व-कल्याण और पर-कल्याण के लिए सफल सिद्ध होती है। लगभग २०० वर्षों के इतिहास में ६० प्रतिशत साधु कठोरतम जैन दीक्षा के आजीवन अनुष्ठान में सफल रहे हैं। यह सब तेरापंथ साधु संघ की सर्वांग सुन्दर दीक्षा-पद्धति का ही विशुद्ध परिणाम है।

तपश्चर्या

संघ के साधु-साध्वियों की तप साधना भी प्राचीन तपोयुग की याद दिलाने वाली है। संघ में अनेकानेक साधु आजीवन एकान्तर तप से चल रहे हैं। वे एक दिन भोजन करते हैं और अगले दिन व्रत। यही क्रम सदा के लिए चलता रहता है। पाँच, सात और दस दिनों की तपस्या संघ में साधारण ही मानी जाती है। पचास-पचास और इससे भी अधिक दिनों की तपस्या करने वाले साधु साध्वियाँ भी संघ में हैं। संघ में १०८ दिनों की तपश्चर्या पहले भी हो चुकी है। उक्त प्रकार की तपश्चर्या में पानी के अतिरिक्त कुछ भी खाया पिया नहीं जाता है। एक प्रकार की तपस्या वह होती है जिसमें उबली हुई छाछ का निथरा हुआ पानी ही पीया जाता है और कुछ भी खाया पिया नहीं जाता। ऐसी तपस्याएँ छह छह व नौ-नौ महीने तक की होती रही हैं। इसी वर्ष (वि० सं० २०१६) में साध्वी श्रीपन्नाजी ने छह महीने की तपस्या की है व साध्वी श्रीभूराजी ने ३३६ दिन की तपस्या की है। एक-एक तपस्वी अपने जीवनकाल में कितनी उग्र तपस्या कर लेते हैं इसका एक उदाहरण तपस्वी श्रीशिवजी स्वामी की तपस्या का विवरण है। ३८ वर्ष के साधु-जीवन में उन्होंने जो जलाधार व तक्रजलाधार तप किया वह इस प्रकार है —

तपस्या		कितनी बार
१ दिन का उपवास	—	४२२ बार
२ दिनों का उपवास	—	२२ बार

तपस्या		कितनी बार
३ दिनों का उपवास	—	३४ बार
४ दिनों का उपवास	—	८ बार
५ दिनों का उपवास	—	११ बार
६ दिनों का उपवास	—	७ बार
७ दिनों का उपवास	—	३ बार
८ दिनों का उपवास	—	६ बार
९ दिनों का उपवास	—	३ बार
१० दिनों का उपवास	—	३ बार
११ दिनों का उपवास	—	३ बार
१२ दिनों का उपवास	—	३ बार
१३ दिनों का उपवास	—	२ बार
१४ दिनों का उपवास	—	३ बार
१५ दिनों का उपवास	—	३ बार
१६ दिनों का उपवास	—	२ बार
३० दिनों का उपवास - एक महीना	—	१२ बार
३२ दिनों का उपवास	—	१ बार
३६ दिनों का उपवास	—	२ बार
४० दिनों का उपवास	—	१ बार
४५ दिनों का उपवास	—	६ बार
५० दिनों का उपवास	—	२ बार
५५ दिनों का उपवास	—	१ बार
६० दिनों का उपवास	—	५ बार
७८ दिनों का उपवास	—	१ बार
९० दिनों का उपवास	—	१ बार
१८६ दिनों का उपवास	—	१ बार

इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के तप हैं जो अनेकों साधु

साध्वी-जन करते हैं। जिनमें लघुसिंहनिक्रीड़ित, रत्नावली, आयम्बिल वर्धमान, कर्मचूर, आदि तप उल्लेखनीय हैं।

वर्तमान में मुनिश्री सुखलालजी संघ में असाधारण तपस्वी हैं। वे वैसाख व जेठ की चिलचिलाती धूप में अत्युष्ण शिला पर लेट कर घंटों तक आतप लेते हैं स्वाध्याय करते हैं जहाँ साधारण व्यक्ति का कुछ क्षणों के लिए भी ठहर सकना दुस्साध्य होता है। भोजन-त्याग की उग्र तपस्याएँ तो उनकी चलती ही रहती हैं। कभी-कभी सबको आश्चर्य में डाल देने वाली जल-त्याग की लम्बी तपस्या भी वे करते हैं। अभी अभी वि० संवत् २०१६ की चैत्र पूर्णमासी को उनकी एक छह महीने की तपस्या पूरी हुई। इस तपस्या के बीच उनका यथोचित भोजन चालू था और पानी का पूर्ण परिहार था। राजस्थान जैसे उष्ण प्रदेश में ऐसी तपस्या हो सकती है यह सर्वसाधारण के समझ में भी नहीं आ सकता है और न आयुर्वेदाचार्य व एम बी, बी एस डाक्टरों के ही। पर स्थिति यह है कि तपस्वी लोग अपने आपको इतना साध लेते हैं कि उन पर स्वास्थ्य के सामान्य नियम लागू ही नहीं होते। मुनि श्री सुखलालजी भी शिवजी स्वामी की तरह तीस-तीस, चालीस-चालीस और पचास-पचास दिनों की निराहार तपस्याएँ अनेकों बार कर चुके हैं, जिनमें केवल जल ही उनके जीवन का आधार था। आचार्य श्री तुलसी के निर्देशानुसार वे सरदार शहर राजस्थान में मान्य मन्त्रीमुनि श्रीमगनलालजी स्वामी के सान्निध्य में रहते हैं।

तपस्विनी साध्वियों में साध्वी श्रीप्रणवाजी का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने लघुसिंहनिक्रीडित तप की चतुर परिपाटी को भी पूर्ण कर डाला है जिसका कि शताब्दियों के इतिहास में कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। यह तप छह महीने व सात दिन का होता है। इसमें क्रमशः ९ तक तप को चढ़ाया जाता है और वापिस

एक तप उतारा जाता है। जैसे सर्वप्रथम में एक दिन का व्रत, फिर दो दिन का व्रत, फिर एक दिन का व फिर तीन दिन का, फिर चार दिन का व फिर तीन दिन का व फिर पाँच दिन का। इसी क्रमसे हर एक तप को दो-दो बार चढ़ाया जाता है और वहाँ से दो-दो बार करते हुए उतारा जाता है। बीच में एक-एक दिन का भोजन (पारणा) चलता रहता है। इस तप की विशेष कठोरता तो इस बात में है कि भोजन के दिन भी एक ही बार भोजन किया जाता है और वह भी एक ही प्रकार का खाद्य, जैसे चने की रोटी खाई तो केवल चने की रूखी रोटी और गेहूँ की रोटी खाई तो केवल गेहूँ की रूखी रोटी। बहुत सारे तपस्वी इस परिपाटी को लांघने का प्रयत्न करते हैं पर बीच ही में वे समाधि मरण प्राप्त कर लेते हैं। साध्वीश्री प्रणचांजी का यह तप आचार्यश्री तुलसी के निर्देशन में चला और वह अपने लक्ष्य में पूर्ण सफल हुई।

इस प्रकार संघ के साधु-साध्वियों के तप का लेखा-जोखा बहुत ही अनोखा है। शास्त्रों में अनेकानेक उग्र तपस्वियों का वर्णन आता है, पर तेरापंथ सम्प्रदाय में वैसे तपस्वी साक्षात् देखे जा सकते हैं। हो सकता है संघ के सर्वाङ्गीण अभ्युदय में यह तपोबल ही एक प्रमुख कारण हो।

आचार्य परम्परा

लौहपुरुष श्रीभिक्षुगणी तेरापंथ के प्रवर्तक और प्रथम आचार्य थे। आचार्यश्री तुलसी इस संघ के नवम आचार्य हैं। तेरापंथ के इतिहास में यह एक उल्लेखनीय बात रही है कि अब तक के लगभग दो सौ वर्षों की अवधि में एक के बाद एक आचार्य उतने ही प्रभावशाली देश-कालके ज्ञाता, विचारक और गम्भीर होते रहे हैं। यही कारण है कि संघर्षों और घटनाओं से संकुल दो सौ

वर्षों की इस अवधि में समस्त संघ उत्तरोत्तर विकासोन्मुख हो रहा है। इस अवधि में श्रीमज्जयाचार्य जैसे आचार्य संघ को मिले जो एक कुशल व्यवस्थापक, अप्रतिम शास्त्रज्ञ और जन्मसिद्ध कवि थे। उन्होंने व्यवस्था की दृष्टि से संघ को नाना मर्यादाओं और नाना व्यवस्थाओं के रूप में बहुत बड़ा अनुदान दिया है। राजस्थानी भाषा में साढ़े तीन लाख पद्यों की नव्य रचनाएँ उन्होंने अपने जीवन काल में की है। कालूगणिराज जैसे आचार्य संघ को मिले जिनके पुण्य प्रसाद से साधु संघ अप्रत्याशित रूप से फला, फूला और आगे बढ़ा। नवों आचार्यों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं —

१–आचार्य श्री भिक्षुगणी
२–आचार्य श्री भारीमालगणी
३–आचार्य श्री ऋषिरायगणी
४–आचार्य श्री जयगणी — श्रीमज्जयाचार्य
५–आचार्य श्री मघवागणी
६–आचार्य श्री माणकगणी
७–आचार्य श्री डालगणी
८–आचार्य श्री कालूगणी
९–आचार्य श्री तुलसीगणी

वर्तमान आचार्य श्री तुलसी गणी

आचार्य श्री तुलसी संघ के क्रान्तिकारी आचार्यों में से एक हैं। इन्होंने ११ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण की और २२ वर्ष की अवस्था में आचार्य पद पाया। २२ वर्ष का एक युवक ५०० साधु-साध्वी और लाखों अनुयायियों का दायित्व सँभाले—यह इतिहास की विरल घटनाओं में से एक है। ११ से २२ तक का समय आपका अपने जीवन निर्माण का समय था। इस बीच में आपने लगभग २१ हजार श्लोक संस्कृत, प्राकृत आदि

भाषाओं में वैदुष्य किए और शास्त्र, साहित्य, दर्शन, न्याय, व्याकरण आदि विषयों पर अधिकार पाया। २२ से ३३ वर्ष तक संघ निर्माण के काम में विशेष रस लिया। साधु-समुदाय को शास्त्रीय विद्याओं की ओर आगे बढ़ाया और साध्वी-समाज को संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी आदि भाषाओं के राजमार्ग पर ला खड़ा किया। आपने भारी आयु के ३४ वें वर्ष में सामाजिक अभ्युदय की ओर चरणविन्यास किया। अणुव्रत आन्दोलन के रूप में आप स्वयं तथा संघ के साधु-साध्वी जन देश के नैतिक नव निर्माण में जुटे।

आगम-शोध-कार्य नैतिक नव निर्माण के साथ-साथ लगभग दो वर्षों से आपने एक और गुरुतर काम का भार उठाया है। वह है जैन शास्त्रों का शोध-कार्य। भगवान् महावीर से लेकर २५०० वर्षों की अवधि में जैन आगमों के मूल पाठ बहुत स्थानों पर संदिग्ध हो चले हैं। उनके मौलिक स्वरूप को प्रामाणिक शोध के द्वारा असंदिग्ध बनाया जाए, यह एक महत्त्वपूर्ण और अत्यन्त आवश्यक काम होगा। आचार्यश्री ने पाठ शुद्धि के साथ-साथ मूल आगमों का हिन्दी अनुवाद भी प्रारम्भ करवाया है। अनुवाद में संदिग्ध और विवादपूर्ण स्थलों का अर्थ एक प्रामाणिक समीक्षा के साथ टिप्पणियों में प्रकट किया जाएगा। इस प्रकार जैन आगमों की यह अनुसन्धान प्रधान अनुवाद पद्धति अपने आप में प्रथम होगी। इस कार्य के साथ-साथ जैन आगमों का एक प्रामाणिक कोष भी आचार्य प्रवर तैयार करवा रहे हैं। वह भी बहुत सी अपूर्व विशेषताओं के साथ सम्पन्न होगा ऐसी आशा है। सुना जाता है कि कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य के ग्रन्थ-निर्माण सम्बन्धी काम में ८४ लेखनियाँ चला करती थीं। आचार्यश्री के ग्रन्थ प्रणयन की व्यवस्था मानो उसी ऐतिहासिक संस्मरण को दुहरा रही है। आचार्य श्री ने इससे पूर्व जैन सिद्धान्त दीपिका, श्रीभिक्षु न्याय कर्णिका, कालू यशोविलास आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

तेरापथ के दो सौ वर्ष

तेरापथ के प्रवर्तक आचार्य श्री भिक्षुगणी चाहते थे कि प्राचीन जैन परम्परा में सयममूलक, शिक्षामूलक, सगठनमूलक सुधार आए, पर वैसा सम्भव नही हो सका। तब सवत् १८१७ आषाढ पूर्णिमा के दिन उन्होने अपने तरह साथी अन्य साधुओ सहित नवीन प्रव्रज्या ग्रहण की। तेरापथ के इतिहास का यही आदि दिवस बन गया।

विक्रम सवत २०१७ आषाढ पूर्णिमा तक तेरापथ के दो सौ वर्ष पूरे होते हैं। इन दो सौ वर्षों का इतिहास सघर्षात्मक, घटनात्मक और विकासात्मक रहा है। इतिहास बताता है कि प्रारम्भ में सत्य का विरोध अवश्य होता है, क्योंकि सब साधारण उस सत्य को एकाएक सह नही पाते, किन्तु कालान्तर से लोग उसी सत्य को सहते हैं। उससे अपने जीवन मार्ग को आलोकित करते हैं। ठीक यही तेरापथ के विषय में घटित हुआ है। आचार्य भिक्षुगणी को जीवन में अनेक सघर्ष सहने पड़े। प्रतिपक्षी लोगो ने इतने निम्न स्तर से उनका विरोध किया कि भिक्षुजी तथा उनके अनुयायी साधुओ को भिक्षा मत दो, स्थान मत दो और उनके पास मत जाओ, यहाँ तक कि एक बार तो उन्हें चातुर्मास में राजकीय सहयोग से शहर से निकलवा दिया। और भी अनेक प्रयत्न उनके विरोध में लोगों ने किए। धीरे-धीरे सत्य स्वय चमकने लगा और आचार्य श्री भिक्षुगणी की क्षमा, तपस्या व सयम-साधना से लोग प्रभावित होने लगे। राजस्थान में सर्वत्र मान बढ़ने लगा। राजा महाराजा लोग भी तेरापथी आचार्यों एव साधुओ को पूर्ण आदर की दृष्टि से देखने लगे। प्रतिपक्षियो का विरोध ही तेरापथ की प्रगति का एक मुख्य कारण बन गया। साधु सख्या प्रारम्भ में १३ थी और वह भी घट कर ६ तक चली गई थी। आज २०० वर्षों के बाद तेरापथ के साधु-साध्वियों की सख्या लगभग ६५० हो गई है। श्रावक अर्थात् अनुयायी गुजरात, महाराष्ट्र, पजाब, राजस्थान

उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, आन्ध्र, मद्रास, मैसूर, आदि भारतवर्ष के सभी प्रमुख प्रान्तों में है।

विगत १० वर्षों से तो तेरापंथ साधु-संघ ने अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से सेवाएँ देकर समग्र देश का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। देश के अधिकारियों विचारकों एवं विद्वानों ने तेरापंथ की संगठन-शक्ति तथा साधना की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। जर्मनी, इंगलैण्ड, अमेरिका प्रभृति विदेशों के भी अनेक विचारक एवं विद्वानों ने तेरापंथ की जानकारी प्राप्त की और वे उससे अत्यन्त प्रभावित हुए हैं।

धार्मिक सह-अस्तित्व की दिशा में

सदा से ही तेरापंथ संघ की मण्डनात्मक नीति रही है। दूसरे किसी भी धर्म विशेष के प्रति निन्दात्मक, आक्षेपात्मक साहित्य लिखना सर्वथा नीति में सदा ही वर्जित रहा है। यहाँ तक कि दूसरे लोगों द्वारा तेरापंथ पर किए गए निन्दात्मक और भ्रान्तिपूर्ण आक्षेपों का कभी निम्नस्तरीय प्रतिवाद भी नहीं किया गया है। तेरापंथ मण्डनात्मक पद्धति से ही अपने अभिमतों का मार्ग बढ़ाता आया है। तेरापंथ के वर्तमान अधिनायक आचार्यश्री तुलसी ने तो धार्मिक सह-अस्तित्व की दिशा में एक पंचसूत्री कार्यक्रम भी जनता के समक्ष रखा है। जिसमें बहुत सारे दूसरे सम्प्रदायों व धर्मों के आचार्यों व गुरुओं ने पूर्ण सहमति प्रकट की है। जनता में धार्मिक वैमनस्य घटे हैं। असहिष्णुताएँ सीमित हुई हैं और धार्मिक सह-अस्तित्व का वातावरण बना है। पंचसूत्री योजना यह है —

१– मण्डनात्मक नीति बरती जाए। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाए। दूसरों पर मौखिक या लिखित आक्षेप न किये जाएं।

२– दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाए।

३– दूसरे सम्प्रदाय और उनके साधु-सन्तो के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाए।

४– कोई सम्प्रदाय परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक बहिष्कार आदि के रूप में अवाछनीय व्यवहार न किया जाए।

५– धर्म के मौलिक तथ्य अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवन-व्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाए।

धार्मिक सहिष्णुता के विषय में तेरापथ स्वय उक्त योजना के आधार पर चलता है और दूसरे धर्म-सघ उस पर चलें, ऐसी अपेक्षा रखता है।